प्रकाशन तिथि : 26 फरवरी 2017, मूल्य 2 रुपये, वर्ष 35, अंक 8, कुल पृष्ठ 36

ISSN 2454 - 5163

वीतराग-विज्ञान

(पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का मुखपत्र)

सम्पादक :
डॉ. हुकमचंद भारिल्ल

श्री दिगम्बर जैन मन्दिर विराट नगर, जयपुर (राज.)

वीतराग-विज्ञान (403)

हिन्दी, मराठी व कन्नड़ भाषा में प्रकाशित

जैनसमाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक

सम्पादक :
डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

सह-सम्पादक :
डॉ. संजीवकुमार गोधा

प्रकाशक एवं मुद्रक :
ब्र. यशपाल जैन द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये जयपुर प्रिण्टर्स प्रा. लि., जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

सम्पर्क-सूत्र :
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015
फोन :(0141)2705581, 2707458
E-mail : ptstjaipur@yahoo.com
ISSN 2454 - 5163

शुल्क :

आजीवन	:	251 रुपये
वार्षिक	:	25 रुपये
एक प्रति	:	2 रुपये

मुद्रण संख्या :

हिन्दी	:	7200
मराठी	:	2000
कन्नड़	:	1000
कुल	:	**10200**

करण शक्ति

अरे जीव ! अन्तर के एक चैतन्य साधन को चूककर बाहर के अन्य साधन तूने अनन्तबार किये; व्रत और तप किये, दिगम्बर मुनि द्रव्यलिंगी होकर पंच महाव्रत का पालन किया, हजारों रानियाँ छोड़कर शुभ वैराग्य से त्यागी हुआ, शास्त्र पढे, वन में रहा, मौन धारण किया; ऐसे-ऐसे अनेक साधन अनन्तबार किये, तथापि अभी तक तुझे किञ्चित मात्र हित की प्राप्ति नहीं हुई। तो अब तू अपने मन में क्यों विचार नहीं करता कि इन सब साधनों क अतिरिक्त अन्य कौन-सा सच्चा साधन शेष रह जाता है ? सद्गुरुगम से तू उस साधन का विचार कर।

"प्रभो ! मेरे हित का साधन क्या ?" - ऐसा पूछने पर श्री गुरु कहते हैं - " हे वत्स ! तेरा आत्मा अनन्तगुणों से परिपूर्ण चैतन्य मूर्ति है, उसका अवलम्बन कर, वही तेरे हित का साधन है। तेरे आत्मा से भिन्न अन्य कोई तेरे हित का साधन नहीं है, इसलिये अभी तक माने हुए बाह्य साधनों की दृष्टि छोड़ और अन्तर के चैतन्य स्वभाव की दृष्टि कर, उसका विश्वास करके उसी को साधन बना। तेरा शुद्ध आत्मा ही साध्य है और उस शुद्ध आत्मा का अवलम्बन करना ही साधन है - इसप्रकार तेरे साध्य और साधन दोनों का तुझमें ही समावेश हो जाता है।

– आत्मप्रसिद्धि, पृष्ठ 527-528

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का , घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 35 (वीर नि. संवत् - 2543) 403 अंक : 8

आतम अनुभव आवै...

जब आतम अनुभव आवै, जब आतम अनुभव आवै।
तब और कछू न सुहावे, तब और कछू न सुहावे ।।टेक ।।
जिनआज्ञा अनुसार प्रथम ही, तत्त्व प्रतीति अनावै ।
वरनादिक रागादिकतैं निज, चिन्ह-भिन्न फिर ध्यावै ।। जब.।।1।।
मतिज्ञान फरसादि विषय तजि, आतम सम्मुख धावै ।
नय प्रमान निक्षेप सकल श्रुत, ज्ञानविकल्प नसावै ।। जब.।।2।।
चिदऽहं शुद्धोऽहं इत्यादिक, आप मांहि बुध आवै ।
तन पै वज्रपात गिरतैं हू, नेकु न चित्त डुलावै ।। जब.।।3।।
स्वसंवेद आनंद बढ़ै अति, वचन कह्यो नहिं जावै ।
देखन जानन चरन तीन विच एक स्वरूप लखावे ।। जब.।।4।।
चित कर्ता चित कर्म भाव चित, परनति क्रिया कहावै।
साधक साध्य ध्यान ध्येयादिक, भेद कछू न दिखावै ।। जब.।।5।।
आत्मप्रदेश अदृष्ट तदपि, रसस्वाद प्रगट दरसावै ।
ज्यों मिश्री दीसत न अंध को, सपरस मिष्ट चखावै ।। जब.।।6।।
जिन जीवन के संसृत पारावार पार निकटावै ।
'भागचन्द' तिन सार अमोलक परम रतन वर पावैं ।। जब.।।7।।

– कविवर पण्डित भागचन्दजी

क्यों लें महाविद्यालय में प्रवेश ?

1. श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय का सन् 1977 से 39 वर्षों का गौरवशाली इतिहास है।
2. यहाँ पूर्णत: धार्मिक परिवेश मिलता है, जिससे बालक संस्कारशील धर्मनिष्ठ बन जाते हैं।
3. डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल, ब्र. यशपालजी जैन, पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा, पण्डित पीयूषजी शास्त्री आदि अनेक विद्वानों के सान्निध्य में सतत् प्रशिक्षण से जैनतत्त्वज्ञान/दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान बनते हैं।
4. जैनदर्शन के विद्वान होने से स्व के कल्याण के साथ-साथ अपने परिवार-समाज के कल्याण में निमित्त होते हैं।
5. छात्रावास में रहने से अपने हिताहित का स्वयं निर्णय करने की सामर्थ्य प्रगट होती है।
6. यहाँ विभिन्न प्रान्तों के छात्रों के साथ रहकर पूरी भारतीय संस्कृति का परिचय प्राप्त करने का अवसर मिलता है।
7. महाविद्यालय के छात्र औसतन प्रतिवर्ष राजस्थान बोर्ड तथा विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में मैरिट में स्थान प्राप्त करते हैं।
8. संस्कृत भाषा में शास्त्री (बी.ए.) की डिग्री राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय की होने से अपेक्षाकृत रोजगार के अधिक उन्नत अवसर उपलब्ध होते हैं।
9. छात्रों की वक्तृत्वशैली, तर्कशैली एवं अध्ययनशीलता का विशेष विकास होता है, जिससे छात्र सभी क्षेत्रों में भी सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

इसप्रकार श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय में प्रवेश पाकर आपके बालक का सर्वांगीण विकास होता है। वह अपने और अपने परिवार, समाज की उन्नति में निमित्त होता है। जैनदर्शन का विद्वान बनकर स्व-पर कल्याण के सम्पादन हेतु अग्रसर होता है।

क्या आप नहीं चाहते कि आपका बालक भी ऐसा हो ? यदि हाँ.. तो महाविद्यालय में प्रवेश हेतु बालक को **दिनांक 21 मई से 7 जून 2017 तक खनियांधाना (म.प्र.)** में आयोजित शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर में अवश्य भेजें।

– पण्डित शान्तिकुमार पाटील (मो.– 09413975133)

फॉर्म मंगाने का पता : श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर-302015, फोन-0141-2705581, 2707458

सम्पादकीय

कुन्दकुन्द शतक अनुशीलन

(गतांक से आगे ...)

भगवान आत्मा

(४-५)

णिग्गंथो णीरागो णिस्सल्लो सयलदोसणिम्मुको।
णिक्कामो णिक्कोहो णिम्माणो णिम्मदो अप्पा।।
णिद्दंडो णिद्दंद्दो णिम्ममो णिक्कलो णिरालंबो।
णीरागो णिद्दोसो णिम्मूढो णिब्भयो अप्पा।।

(हरिगीत)

निर्ग्रन्थ है नीराग है निःशल्य है निर्दोष है।
निर्मान-मद यह आतमा निष्काम है निष्क्रोध है।।
निर्दण्ड है निर्द्वन्द्व है यह निरालम्बी आतमा।
निर्देह है निर्मूढ है निर्भयी निर्मम आतमा।।

भगवान आत्मा परिग्रह से रहित है, राग से रहित है, माया, मिथ्यात्व और निदान शल्यों से रहित है, सर्व दोषों से मुक्त है, काम-क्रोध से रहित है और मद-मान से भी रहित है।

भगवान आत्मा हिंसादि पापों रूप दण्ड से रहित है, मानसिक द्वन्द्वों से रहित है, ममत्वपरिणाम से रहित है, शरीर से रहित है, आलम्बन से रहित है, राग से रहित है, दोषों से रहित है, मूढ़ता और भय से भी रहित है।

ये गाथायें नियमसार नामक शास्त्र की ४३-४४वीं गाथायें हैं। इन गाथाओं में भगवान आत्मा के शुद्ध स्वरूप को बताया गया है।

इन गाथाओं का भाव स्पष्ट करते हुए नियमसार के टीकाकार मुनिराज

पद्मप्रभमलधारिदेव तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में लिखते हैं –

''१. शुद्धजीव, बाह्याभ्यन्तर चौबीस प्रकार के परिग्रहों के परित्यागस्वरूप (अभावस्वरूप) होने से **निर्ग्रन्थ** है।

२. सम्पूर्ण मोह-राग-द्वेषात्मक चेतन कर्मों (भावकर्मों) के अभाव से **नीराग** है।

३. माया, मिथ्यात्व और निदान – इन शल्यों के अभाव से **नि:शल्य** है।

४. शुद्धनिश्चयनय से शुद्धजीवास्तिकाय के द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म का अभाव होने से शुद्धजीव **सर्वदोषविमुक्त** है।

५. शुद्धनिश्चयनय से उसे निजपरमतत्त्व की भी वांछा नहीं है; इसकारण वह शुद्ध जीव **निष्काम** है।

६. निश्चयनय से प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त परद्रव्यपरिणति के अभाव से **निष्क्रोध** है।

७-८. सदा परमसमरसीभावस्वरूप होने से **निर्मान** और नि:शेषरूप से (पूर्णत:) अन्तर्मुख होने से **निर्मद** है।[१]''

''९. मनदण्ड, वचनदण्ड और कायदण्ड के योग्य द्रव्यकर्मों और भावकर्मों का अभाव होने से आत्मा **निर्दण्ड** है।

१०. निश्चयरूप से आत्मा में परमपदार्थ के अतिरिक्त अन्य सभी पदार्थों का अभाव होने से आत्मा **निर्द्वन्द्व** है।

११. प्रशस्त और अप्रशस्त समस्त मोह-राग-द्वेष का अभाव होने से आत्मा **निर्मम** है।

१२. निश्चय से औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण नामक पाँचों शरीरों का आत्मा में अभाव होने से आत्मा **निक्कल (नि:शरीर)** अर्थात् शरीर रहित है।

१. नियमसार अनुशीलन भाग-१, पृष्ठ २०१

१३. निश्चय से परमात्मा को परद्रव्यों के अवलम्बन का अभाव होने से आत्मा **निरालंब** है।

१४. आत्मा में मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा तथा स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद – इन चौदह अभ्यन्तर परिग्रहों का अभाव होने से आत्मा **नीराग** है।

१५. निश्चय से सम्पूर्ण पापमलकलंकरूपी कीचड़ को धो डालने में समर्थ सहज परमवीतराग सुखसमुद्र में निमग्न प्रगट सहज अवस्थारूप सहज ज्ञानशरीर के द्वारा पवित्र होने के कारण आत्मा **निर्दोष** है।

१६. सहज निश्चयनय के बल से सहज ज्ञान, सहज दर्शन, सहज चारित्र, सहज परमवीतरागसुख आदि अनेक परमधर्मों के आधारभूत निज परम-तत्त्व को जानने में समर्थ होने से आत्मा **निर्मूढ** है अथवा शुद्धसद्भूत-व्यवहारनय के बल से सादि-अनंत, अमूर्त, अतीन्द्रिय स्वभाववान तथा तीन काल और तीन लोक के स्थावर-जंगमस्वरूप समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों को एक समय में जानने में समर्थ सम्पूर्णत: निर्मल केवलज्ञानरूप से अवस्थित होने से, केवलज्ञानस्वभावी होने से आत्मा **निर्मूढ** है।

१७. और समस्त पापरूपी शूरवीर शत्रुओं की सेना जिसमें प्रवेश नहीं कर सकती – ऐसे निज शुद्ध अन्त:तत्त्वरूप महादुर्ग में निवास करने से आत्मा **निर्भय** है।[१]''

इसप्रकार उक्त दोनों गाथाओं में कुल मिलाकर भगवान आत्मा के **१७** विशेषण दिये गये हैं।

नीराग विशेषण दो बार आया है। दोनों गाथाओं में एक-एक बार। यद्यपि टीकाकार ने दोनों गाथाओं में अलग-अलग शब्दों में अर्थ किया है; तथापि दोनों का भाव लगभग एक ही है। इसप्रकार यदि उक्त दोनों को एक विशेषण ही मान लें, तो **१६** विशेषण रह जाते हैं।

इसप्रकार यहाँ उक्त सोलह विशेषणों के माध्यम से भगवान आत्मा का

१. नियमसार अनुशीलन भाग-१, पृष्ठ १९०-१९१

स्वरूप स्पष्ट किया गया है। यह वह भगवान आत्मा है, शुद्धात्मा है, निजात्मा है, प्रत्येक भव्य जीव का स्वयं का आत्मा है; जिसके दर्शन का नाम सम्यग्दर्शन, जिसके सही ज्ञान का नाम सम्यग्ज्ञान और जिसमें लीन होने का नाम सम्यक्‌चारित्र है और मोक्षदशा में भी एकमात्र आराध्य है।

इन गाथाओं का भाव आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं –

''यहाँ जीव को शुद्धजीवास्तिकाय कहा है। असंख्यप्रदेशात्मक शुद्धजीव कहो, कारणपरमात्मा कहो, ध्रुवस्वभाव कहो – सब एक ही हैं। जिस क्षेत्र में से अथवा जिसकी एकाग्रता से सम्यग्दर्शन पर्याय प्रकट होती है – वह असंख्यप्रदेशी जीव है, उसमें परिग्रह नहीं है।

बाह्य-अभ्यन्तर चौबीस परिग्रह पहले अस्तित्व में थे और बाद में उन्हें त्यागा – ऐसा यहाँ अर्थ नहीं है। **परिग्रह का त्याग करना तो पर्याय में होता है। यहाँ पर्याय को गौण करके शुद्धजीव की बात चलती है।**

धन, धान्य, दासी, दास, वस्त्रादि दश प्रकार के बाह्य परिग्रह शुद्ध आत्मा में नहीं हैं। राग-द्वेषवाली पर्याय में वे पदार्थ निमित्तरूप से होते हैं; किन्तु यहाँ तो शुद्धस्वभाव की बात है। **शुद्धस्वभाव में बाह्य परिग्रह के निमित्तपने का अभाव है।**

ऐसे परिग्रहरहित होने से शुद्धजीव निर्ग्रन्थ हैं। यहाँ निर्ग्रन्थ अर्थात् मुनिदशा – ऐसा अर्थ नहीं हैं; किन्तु शुद्धजीव त्रिकाल निर्ग्रन्थस्वरूप है – उसकी बात है। इसी के आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रकट होकर पर्याय में निर्ग्रन्थता प्राप्त होती है और शरीर में निर्ग्रन्थता – नग्नदशा शरीर के कारण हो जाती है।

परमशुद्धतत्त्व को ग्रहण करूँ – ऐसा राग स्वभाव में नहीं है, यह बात निष्काम के प्रकरण में आई थी और **राग की वृत्ति को छोडूँ – ऐसा द्वेष स्वभाव में नहीं है, यह बात निःक्रोध में आई है।**

शुद्धस्वभाव निश्चयनय का विषय है और उसके आश्रय से विकार का अभाव होकर जो एकाग्रता प्रकट होती है, वह व्यवहारनय का विषय है।

अज्ञानी जीव चित्तनिरोध बाह्य से करना चाहते हैं; किन्तु बाह्यवस्तु से या शरीर की क्रिया से चित्त का निरोध नहीं होता है। मन तो जड़ है और उसके लक्ष से होने वाला राग विकार है – इन दोनों का आत्मा में अभाव है। आत्मस्वभाव राग-द्वेषरहित है; इसप्रकार **उसकी अस्ति के बल से राग का अभाव होने पर चित्त का निरोध हो जाता है।**

अपना शुद्धात्मा निश्चयनय का विषय है और उसके आश्रय से जो एकाग्रता की पर्याय प्रकट हुई, वह व्यवहारनय का विषय है।

इसप्रकार उक्त कथनानुसार विशुद्ध, सहजसिद्ध, नित्य, समस्त आवरणों से रहित अपना कारणशुद्धात्मा ही एकमात्र अंगीकार करने योग्य है। पुण्य-पाप आदरणीय नहीं, शुद्धस्वरूप एक ही उपादेय है।

इसप्रकार अपने शुद्ध परमात्मा का आश्रय करे तो धर्मरूपी कार्य प्रकट हो। इसलिये वह एक ही उपादेय है।[१]

मन-वचन-काय के निमित्त से होनेवाला विकाररूप दण्ड त्रिकाली स्वभाव में नहीं है। राग-द्वेष का द्वैत शुद्धस्वभाव में नहीं है। शुद्धात्मा में ममता नहीं, शरीर नहीं, पर का अवलम्बन नहीं, राग नहीं, द्वेष नहीं, मूढ़ता नहीं, भय नहीं है। पर्याय में होनेवाले दोष शुद्धस्वभाव में नहीं हैं – ऐसा कहकर यहाँ स्वभावदृष्टि कराने का प्रयोजन है।

आत्मा की एक समय की पर्याय में मन-वचन-काय के लक्ष से होनेवाले शुभाशुभ भाव **दण्ड** हैं और वे एक समय की अवस्थामात्र में हैं। भक्ति का भाव, उपवास का विकल्प, महाव्रत के परिणाम – ये सभी **दण्ड** हैं। हिंसा, झूठ, चोरी के भाव अशुभ राग हैं और दया, दान, पूजा आदि के भाव शुभराग हैं; **दोनों ही दण्ड** हैं। उस दण्ड के योग्य द्रव्यकर्म और भावकर्म का एक समय की पर्याय में निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

---

१. नियमसार प्रवचन, भाग-१, पृष्ठ ४२१

यदि इस कथन से कोई ऐसा समझ बैठें कि पर्याय में भी आत्मा निर्दण्ड है तो यह बात असत्य है। आत्मा पर्याय में भी निर्दण्ड हो तो फिर कुछ भी करने को नहीं रहा और ऐसी दशा में पर्याय में प्रकट आनन्द भी होना चाहिये; किन्तु ऐसा नहीं है।

यहाँ तो पर्यायबुद्धि छुड़ाने के लिये और स्वभावबुद्धि कराने के लिये दण्ड का शुद्धभाव में अभाव बताया है।

आत्मा शुद्ध चैतन्य एकरूप है, उसमें बाह्य अन्य चेतन और जड़ पदार्थों का तो अभाव है ही; साथ ही दया-दानादि विकल्पों का भी अभाव है। दूसरे जीव, अजीव पदार्थ, पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष तत्त्व भी शुद्ध ध्रुवस्वभाव में नहीं हैं।

कोई कहे कि आत्मा सर्वथा अद्वैत ही है और अन्य वस्तुयें हैं ही नहीं तथा पर्याय भी नहीं है तो यह बात सर्वथा खोटी है।

देव-शास्त्र-गुरु के प्रति लगन हो वह प्रशस्त मोह और राग है। भगवान के प्रति, सम्मेदशिखरजी, गिरनारजी आदि तीर्थों के प्रति राग हो, वह प्रशस्त राग है और सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के विरुद्ध कोई बोलता हो, उसके प्रति अल्प द्वेष हो जावे तो वह प्रशस्त द्वेष है। स्त्री, पुत्र, कुटुम्बादि के प्रति झुकाव होना अप्रशस्त मोह और राग है और जो अपने कुटुम्ब से विरुद्ध हो, उसके प्रति द्वेष होना वह अप्रशस्त द्वेष है।

मोह-राग-द्वेष एक समय की अवस्था में हैं, उनकी रुचि ही संसार है। उन जितना ही आत्मा को मानना जैनदर्शन नहीं है; किन्तु मोह-राग-द्वेष आत्मा में नहीं है, आत्मा शुद्ध चैतन्य निर्मम है – ऐसे शुद्ध चैतन्य का अवलम्बन लेना धर्म है और वही जैनदर्शन है।

आत्मा को देव-शास्त्र-गुरु का अवलम्बन तो नहीं, परन्तु दया-दानादि भावों का भी अवलम्बन नहीं है। आत्मा को अपने शुद्धस्वभाव का अवलम्बन है, किन्तु पर का अवलम्बन नहीं है; इसलिये वह निरालम्ब है।

व्यवहारशास्त्रों में कदाचित् ऐसा कथन आवे कि सम्यग्दृष्टि को शुभभाव का तथा भगवान का अवलम्बन है, वहाँ ऐसा समझना चाहिये कि वह कथन निमित्त का ज्ञान कराने के लिये है।

परपदार्थों का तो आत्मा में सदा ही अभाव है और पर्याय में होनेवाले संयोगी भावों का भी शुद्ध आत्मा में अभाव है – ऐसी श्रद्धा-ज्ञान होने पर पर्याय में भी संसार के अभाव का परिणमन होता जाता है और शुद्धदशा की प्राप्ति होती है।

चौदह परिग्रह से रहित आत्मा नीराग है – ऐसी दृष्टि धर्म का कारण है।

आत्मा में अनेक धर्म है – उनमें सहजज्ञान, सहजदर्शन, सहजचारित्र, सहजपरमवीतराग सुख आदि हैं। वीर्य आदि गुण उसमें आ जाते हैं। निश्चयनय से उन अनन्त धर्मों का आधार निजपरमतत्त्व हैं। धर्म तो अनेक हैं, किन्तु धर्मी एक हैं।

यहाँ आत्मा का अर्थ है – त्रिकाली शुद्धभाव। त्रिकाली शुद्धभाव अनन्त गुणों के अभेद निजपरमतत्त्व को जानने में समर्थ है अर्थात् जानने के स्वभाववाला है; इसलिये आत्मा मूढ़तारहित है। यहाँ वर्तमान पर्याय की बात नहीं है, त्रिकाल चैतन्यस्वभाव की बात है।

यहाँ पाप का अर्थ विकार समझना, इसमें शुभ-अशुभ दोनों भाव आ जाते हैं। शुभाशुभ भावों के असंख्य भेद हैं, वे सभी आत्मा की शुद्धता को रोकते हैं; अतः शत्रु हैं।

जहाँ तक आत्मा की निर्बलता शेष है, वहाँ तक विकार का जोर है; परन्तु शुद्ध अन्तःतत्त्वरूपी ऐसा दुर्ग है कि जिसमें विकार की शूरवीर सेना प्रवेश नहीं कर सकती।

यहाँ अन्तःतत्त्व का अर्थ अन्तरात्मा मत समझना; क्योंकि वह तो नवीन प्रगटती निर्मल पर्याय है। **यहाँ अन्तःतत्त्व अर्थात् अनादि-अनन्त एकरूप रहता हुआ शुद्ध भाववाला कारणपरमात्मा है, जिसके द्रव्य-**

गुण-पर्याय एकरूप शुद्ध हैं।

इसप्रकार अन्तःतत्त्वरूप दुर्ग में बसता होने से आत्मा निर्भय है।

इन बोलों द्वारा लक्षित आत्मा का लक्ष करने से धर्मदशा प्रगट होगी।

– ऐसा यह आत्मा ही वस्तुतः उपादेय है।[१]''

उक्त गाथा में परमशुद्धनिश्चयनय के विषयभूत परमपारिणामिकभाव रूप भगवान आत्मा के निर्ग्रन्थादि जो भी विशेषण दिये गये हैं; वे सभी द्रव्यस्वभाव के हैं, पर्याय के नहीं।

तात्पर्य यह है कि मिथ्यात्व और क्रोधादि अंतरंग परिग्रह वर्तमान पर्याय में होने पर भी द्रव्यस्वभाव में नहीं है। **उक्त द्रव्यस्वभाव में अपनापन स्थापित होने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप निर्मल पर्याय प्रगट होती है और मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप विकारी पर्यायों का पर्याय में भी अभाव हो जाता है।**

उक्त सम्पूर्ण कथन का सार यह है कि परमशुद्धनिश्चयनय अथवा परमभावग्राही शुद्धद्रव्यार्थिकनय के विषयभूत परमपारिणामिकभावरूप त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा में मन-वचन-कायरूप **दण्ड** नहीं है।

परपदार्थों और परभावों का अभाव होने से किसी भी प्रकार का **द्वन्द** नहीं है; औदारिकादि पाँच **शरीर** नहीं हैं; परद्रव्यों का आलम्बन नहीं है; चौदह प्रकार के **अंतरंग परिग्रह** नहीं हैं; किसी भी प्रकार का कोई **दोष** नहीं है; किसी भी प्रकार की **मूढता** और **भय** नहीं है।

अतः वह निर्दण्ड है, निर्द्वन्द्व है, निर्मम है, अदेह है, निरालम्बी है, नीराग है, निर्दोष है, निर्मूढ है और निर्भय है।

ऐसा भगवान आत्मा ही उपादेय है। तात्पर्य यह है कि ऐसा **निज भगवान आत्मा ही अपनापन स्थापित करने योग्य है और इसी में समा जाना साक्षात् धर्म है।**

---

१. नियमसार प्रवचन, भाग-१, पृष्ठ ३८९

कैसा हूँ मैं ?

(६)

अहमेक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमेत्तं पि।।

(हरिगीत)

मैं एक दर्शन ज्ञान मय नित शुद्ध हूँ रूपी नहीं।
ये अन्य सब परद्रव्य किंचित् मात्र भी मेरे नहीं।।

मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ एवं सदा ही ज्ञान-दर्शनमय अरूपी तत्त्व हूँ। मुझसे भिन्न अन्य समस्त द्रव्य परमाणु मात्र भी मेरे नहीं हैं।

तात्पर्य यह है कि मैं समस्त परद्रव्यों से भिन्न, ज्ञान-दर्शनस्वरूपी, अरूपी, एक, परमशुद्ध तत्त्व हूँ। अन्य परद्रव्यों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।

इस गाथा में यह बताया गया है कि ज्ञानी धर्मात्मा स्वयं के बारे में क्या सोचते हैं। उन्हें अपने स्वरूप का संचेतन कैसा होता है ?

समयसार की इस ३८वीं गाथा की टीका करते हुए आचार्य अमृतचन्द्र लिखते हैं –

''जिसप्रकार कोई पुरुष अपनी मुट्ठी में रखे हुए सोने को भूल गया हो, पर किसी के ध्यान दिलाने पर या स्वयं को ही स्मरण आ जाने पर उसे देखे और आनन्दित हो; उसीप्रकार (उसी न्याय से) अनादि मोहरूप अज्ञान से उन्मत्तता के कारण जो आत्मा अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था, अपने परमेश्वर आत्मा को भूल गया था; विरक्त गुरु के द्वारा निरन्तर समझाये जाने पर, **किसीप्रकार समझकर, सावधान होकर; अपने आत्मा को जानकर, उसका श्रद्धान कर और उसका आचरण करके, उसमें तन्मय होकर, जो सम्यक्प्रकार एक आत्माराम हुआ, दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित हुआ; अतीन्द्रिय आनन्द को प्राप्त हुआ; वह ऐसा अनुभव करता है कि – मैं चैतन्यमात्र ज्योतिरूप**

आत्मा हूँ और मेरे अनुभव से ही मैं प्रत्यक्ष ज्ञात होता हूँ।

मैं एक हूँ; क्योंकि चिन्मात्र आकार के कारण समस्त क्रमरूप और अक्रमरूप से प्रवर्तमान व्यवहारिक भावों से भेदरूप नहीं होता।

मैं शुद्ध हूँ; क्योंकि नर, नारकादि जीव के विशेष और अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध तथा मोक्षस्वरूप व्यवहारिक नवतत्त्वों से टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक स्वभावरूप भाव के द्वारा अत्यन्त भिन्न हूँ।

मैं दर्शन-ज्ञानमय हूँ; क्योंकि चिन्मात्र होने से सामान्य-विशेष उपयोगात्मकता का उल्लंघन नहीं करता।

मैं परमार्थ से सदा ही अरूपी हूँ; क्योंकि स्पर्श, रस, गंध और वर्ण जिसके निमित्त हैं – ऐसे संवेदनरूप परिणमित होने पर भी स्पर्शादिरूप स्वयं परिणमित नहीं होता।

– इसप्रकार सबसे भिन्न निज स्वरूप का अनुभव करता हुआ मैं प्रतापवन्त हूँ।

इसप्रकार प्रतापवन्त वर्तते हुए मुझमें मेरी विचित्र स्वरूपसम्पदा के द्वारा यद्यपि बाह्य समस्त परद्रव्य स्फुरायमान हैं; तथापि मुझे कोई भी परद्रव्य परमाणुमात्र भी मुझरूप भासते नहीं कि जो भावकरूप और ज्ञेयरूप से मेरे साथ होकर मुझमें पुन: मोह उत्पन्न करें; क्योंकि निजरस से ही मोह को पुन: अंकुरित न हो – इसप्रकार मूल से ही उखाड़ कर, नाश करके; **महान ज्ञानप्रकाश मुझे प्रगट हुआ है।**''

देखो, आचार्यदेव कितने विश्वास से कह रहे हैं कि –

अनन्त बाह्य पदार्थ मेरे ज्ञान में झलकते हैं तो इसमें क्या है ? यह तो मेरी विचित्र स्वरूपसम्पदा है, इससे मुझे कोई भय नहीं है, इससे मुझे इन्कार भी नहीं; क्योंकि यह तो मेरे स्वभाव की ही विचित्रता है; इसमें कुछ भी ऐसा नहीं, जो मेरे लिए अहितकारी हो।

मेरी स्वरूप सम्पदा में झलकनेवाले परपदार्थ मेरा कुछ भी नहीं

बिगाड़ते।

हाँ, जब मैं उनमें अपनापन करता हूँ, उन्हें अपना जानता हूँ; तभी मोह उत्पन्न होता है; परन्तु मुझे तो ज्ञानप्रकाश प्रगट हो गया है; अत: मुझमें झलकते हुए भी वे पदार्थ मुझे मुझरूप भासित नहीं होते। अत: मुझमें मोह भी उत्पन्न नहीं करते।

परपदार्थों को जानने मात्र से उनसे मोह उत्पन्न नहीं होता, मोह तो उन्हें अपना जानने से; उन्हें अपना मानने से, उनमें जमने-रमने से उत्पन्न होता है। किन्तु मैंने पर में, ज्ञेयभावों में, भावकभावों में अपनेपन की मान्यता को निजरस के बल से जड़मूल से उखाड़ फैंका है और महान ज्ञानप्रकाश प्रगट किया है। अत: इस **ज्ञानप्रकाश के रहते मुझे मोह के पुन: उत्पन्न होने की कोई आशंका नहीं है। इसप्रकार मैं सबसे भिन्न निज स्वरूप का अनुभव करता हुआ प्रतापवन्त हूँ।**

मुट्‌ठी में रखे हुए सोने को भूल जाने और कारण पाकर स्मरण आने पर प्राप्त करने का उदाहरण देकर आचार्यदेव यह समझाना चाहते हैं कि सोना है तो अपने पास ही, अपनी मुट्‌ठी में ही; उसे प्राप्त करने के लिए कहीं जाना नहीं है, बस मुट्‌ठी खोलकर देखना ही है, उसे प्राप्त करने में मुट्‌ठी खोलकर देखने भर की देर है। इसीप्रकार आत्मा भी है तो अपने पास ही, पास ही क्या **हम स्वयं आत्मा ही तो हैं; अत: उसे जानने के लिए, खोजने के लिए कहीं जाना नहीं है; बस परपदार्थों पर से दृष्टि हटाकर निज को निहारना ही है।**

विरक्त गुरु के द्वारा निरन्तर समझाये जाने का आशय यह नहीं है कि गुरु शिष्यों को निरन्तर समझाते ही रहेंगे; क्योंकि उन्हें अपना काम भी करना है, अपने आत्मा का ध्यान भी करना है; वे निठल्ले नहीं हैं जो निरन्तर समझाते ही रहेंगे। उन्होंने एक बार, दो बार, तीन-चार बार अच्छी तरह समझा दिया और शिष्य के हृदय में बात बैठ गई, समझ में आ गई

और आत्मा को प्राप्त करने की लगन लग गई तो फिर शिष्य उसी बात का निरन्तर घोलन करते हैं, चिन्तन-मनन करते हैं, परस्पर चर्चा-वार्ता करते हैं; उससे उनके ज्ञान में निर्मलता बढ़ती है, उनका ज्ञान आत्मसम्मुख होता है और उन्हें आत्मोपलब्धि हो जाती है।

इसी का नाम गुरु के द्वारा निरन्तर समझाया जाना है। गुरु के समझाने की बात तो है ही, पर उससे भी आवश्यक उनकी बताई बात को **धारणा में लेने की है, चिन्तन-मनन करने की है, मंथन करके निर्णय पर पहुँचने की है, शिष्यों के अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग की है, अन्तरलगनी की है।** गुरु तो निमित्तमात्र हैं, कार्य तो अन्तर के पुरुषार्थ से होता है।

इसप्रकार रत्नत्रयरूप परिणत ज्ञानी आत्मा सोचता है कि मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, दर्शनज्ञानमय हूँ, सदा ही अरूपी हूँ और परपदार्थ किंचित्मात्र भी मेरे नहीं हैं। मैं तो चैतन्यज्योतिरूप आत्मा हूँ और आत्मानुभव से ही प्रत्यक्ष ज्ञात होता हूँ।

चौदह गुणस्थानों में से आत्मा के एक समय में एक ही गुणस्थान होता है; अत: वे आत्मा के **क्रमिक भाव** हैं। परन्तु चौदह मार्गणायें प्रत्येक जीव में एकसाथ ही होती हैं; अत: वे जीव के **अक्रमिक भाव** हैं। क्रमिक और अक्रमिक – इन दोनों भावों से भिन्न होने से भगवान आत्मा एक है। **तात्पर्य यह है कि निश्चयनय का विषयभूत चिन्मात्र आत्मा गुणस्थानरूप क्रमिक भावों से और मार्गणास्थानरूप अक्रमिक भावों से भेदा नहीं जाता, भेद को प्राप्त नहीं होता; अत: वह एक है।**

तात्पर्य यह है कि दृष्टि का विषयभूत भगवान आत्मा गुणस्थानातीत है, मार्गणास्थानातीत है।

शुद्ध शब्द का अर्थ करते हुए आचार्य अमृतचन्द्र शुद्धता का कारण व्यावहारिक नव तत्त्वों से भिन्नता को बताते हैं। उनके अनुसार नव तत्त्वों में छुपी हुई आत्मज्योति नव तत्त्वों से भिन्न है; इसलिए शुद्ध है।

उसका नव तत्त्वरूप होना ही अशुद्धता है और नव तत्त्वों से भिन्नता ही शुद्धता है।

आचार्य जयसेन नव तत्त्वों से भिन्नता को शुद्धता स्वीकार करते हुए भी अथवा के रूप में रागादिभाव से भिन्नता की बात भी करते हैं।

इसप्रकार एकता में गुणस्थान और मार्गणास्थानों से भिन्नता और शुद्धता में नव तत्त्वों से भिन्नता की बात आ गई।

'अरूपी' विशेषण के साथ 'सदा' शब्द भी लगा है; जिसका आशय है कि आत्मा सदा ही अरूपी है। इस 'सदा' शब्द को अन्तदीपक मानकर सभी विशेषणों के साथ भी लगाया जा सकता है; जो इसप्रकार होगा – **मैं (भगवान आत्मा) सदा ही एक हूँ, सदा ही शुद्ध हूँ, सदा ही ज्ञान-दर्शनमय हूँ और सदा ही अरूपी हूँ।**

इस अरूपी विशेषण में विशेष जानने की बात यह है कि आत्मा रूप, रस, गंध एवं स्पर्श को जानता है, उनके जाननेरूप परिणमित होता है; परन्तु उनरूप परिणमित नहीं होता; – इसकारण अरूपी है।

ध्यान रहे – इसमें रूपादि को जानने का निषेध नहीं किया, अपितु उन्हें जानने की तो स्थापना की है; निषेध तो उनरूप परिणमित होने का किया है।

इसप्रकार ज्ञानी विचारता है कि मैं क्रम और अक्रमरूप से प्रवर्तमान व्यवहारिक भावों से भेदरूप नहीं होता, इसलिए **एक हूँ;** व्यावहारिक नव तत्त्वों से भिन्न हूँ, इसलिए **शुद्ध हूँ;** सामान्य-विशेष उपयोगात्मक होने से **ज्ञान-दर्शनमय हूँ** और स्पर्शादिक को जानते हुए भी उनरूप परिणमित नहीं होता; इसलिए **अरूपी हूँ** तथा कोई भी परपदार्थ किंचित्मात्र भी मेरे नहीं हैं।

इसप्रकार सभी परपदार्थों से भिन्न निजस्वरूप का अनुभव करता हुआ मैं प्रतापवन्त वर्तता हूँ।

और कैसा हूँ मैं ?

(७)

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेतनागुणमसद्दं ।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिदिट्ठसंठाणं ।।

(हरिगीत)

चैतन्य गुणमय आतमा अव्यक्त अरस अरूप है।
जानो अलिंगग्रहण इसे यह अनिर्दिष्ट अशब्द है।।

हे भव्य ! तुम जीव को अरस, अरूप, अगंध, अव्यक्त, अशब्द, अनिर्दिष्टसंस्थान, अलिंगग्रहण और चेतनागुणवाला जानो।

भगवान आत्मा में न रस है, न रूप है, न गंध है और न शब्द हैं; अतः यह आत्मा अव्यक्त है, इन्द्रियग्राह्य नहीं है। हे भव्यों ! किसी भी लिंग (चिह्न) से ग्रहण न होने वाले, चेतना गुण वाले एवं अनिर्दिष्ट (न कहे जा सकने वाले) संस्थान (आकार) वाले इस भगवान आत्मा को जानो।

यह गाथा आचार्य कुन्दकुन्द कृत पंचपरमागमों में पाई जाती है।

प्रवचनसार में १७२वीं, नियमसार में ४६वीं, पंचास्तिकाय में १२७वीं, अष्टपाहुड़ के भावपाहुड़ में ६४वीं गाथा है और समयसार में यह ४९वीं गाथा है।

आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में भी यह गाथा पाई जाती है। धवल के तीसरे भाग में यह गाथा है और पद्मनन्दी पंचविंशतिका एंव द्रव्यसंग्रहादि में यह गाथा उद्धृत की गई है।

इसप्रकार आत्मा का स्वरूप प्रतिपादन करनेवाली यह गाथा जिनागम की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लोकप्रिय गाथा है।

इस गाथा में अरस, अरूप आदि आठ विशेषणों के माध्यम से दृष्टि के विषयभूत भगवान आत्मा का स्वरूप समझाया गया है।

रस, रूप, गंध और स्पर्श – ये चार पुद्गल के गुण हैं और शब्द पुद्गल

की पर्याय है। ये पाँचों पाँच इन्द्रियों के विषय हैं। यहाँ इन पाँचों के निषेधरूप पाँच विशेषण आरंभ में ही लिए गये हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि आचार्यदेव यह कहना चाहते हैं कि **परमार्थ जीव इन्द्रियों का विषय नहीं है; अत: इन्द्रियों के माध्यम से नहीं जाना जा सकता।**

यह असंख्यातप्रदेशी भगवान आत्मा संसारावस्था में जिस शरीर में रहता है, उसी के आकार में परिणमित हो जाता है। आत्मा का कोई आकार तो सुनिश्चित है नहीं, इसकारण उसके आकार के बारे में यही कहा गया है कि वह निश्चय से असंख्यातप्रदेशी है और व्यवहार से स्वदेहप्रमाण है।

अत: **निश्चय से उसके आकार के बारे में कुछ भी कहना संभव नहीं है; यही कारण है कि उसे यहाँ अनिर्दिष्टसंस्थान कहा गया है।**

पुद्गल के चार गुणों में रस, रूप और गंध – ये तीन गुणों के अभावरूप अरस, अरूप, अगंध विशेषण तो मूल गाथा में है; पर पुद्गल के स्पर्श गुण का निषेध करनेवाला अस्पर्श विशेषण मूल गाथा में नहीं है।

इसलिए प्रवचनसार की तत्त्वप्रदीपिका टीका में तो आचार्य अमृतचन्द्र ने **अव्यक्त विशेषण का ही अर्थ अस्पर्श किया है और वे आचार्य अमृतचन्द्र ही यहाँ अव्यक्त के उससे भिन्न चार अर्थ करते हैं तथा** अस्पर्श विशेषण को गाथा में छन्दानुरोधवश अनुक्त मानकर वैसे ही ऊपर से ले लेते हैं और अरस, अरूप, अगंध के समान उसके भी छह अर्थ करते हैं। **(क्रमशः)**

नि:शुल्क **नि:शुल्क** **नि:शुल्क**

डाकटिकट भेजकर नि:शुल्क साहित्य मंगा लेवें

तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा रचित श्री प्रवचनसार महामण्डल विधान पृष्ठ 96 स्वाध्यायार्थ भेंट दिया जा रहा है। यह कृति मोटानी परिवार, मुम्बई की ओर से नि:शुल्क उपलब्ध है।

इच्छुक महानुभाव 2/- रु. का डाकटिकट निम्न पते पर भेजकर उक्त ग्रंथ मंगा सकते हैं।

पता –नि:शुल्क साहित्य वितरण विभाग-प्रकाशन मंत्री, श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापू नगर, जयपुर-302015 (राज.)

छहढाला प्रवचन

निजात्म-ध्यान की प्रेरणा

पुण्य-पाप फल मांहि, हरख बिलखौं मत भाई।
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई।।
लाख बात की बात, यहै निश्चय उर लाओ।
तोरि सकल जग दन्द-फन्द, निज आतम ध्याओ।।९।।

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान पण्डित दौलतरामजीकृत छहढाला की चौथी ढाल पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

(गतांक से आगे....)

जैसे सम्यग्दर्शन के वर्णन में नि:शंकता आदि आठ अंग कहे जा चुके हैं, वैसे ही सम्यग्दर्शन के साथ भी ज्ञानाचरणरूप आठ अंग होते हैं, उन आठ अंगों सहित सम्यग्ज्ञान की आराधना करनी चाहिए। ज्ञान के आठ अंग निम्नप्रकार हैं –

१. व्यंजनाचार – जहाँ मात्र शब्द के पाठ का ही शुद्ध जानपना हो, उसे व्यंजनाचार कहते हैं।

२. अर्थाचार – जहाँ केवल अर्थमात्र के प्रयोजन सहित शुद्ध जानपना हो, उसे अर्थाचार कहते हैं।

३. उभयाचार – जहाँ शब्द और अर्थ दोनों में संधि सहित सम्पूर्ण जानपना हो, उसे उभयाचार कहते हैं।

४. कालाचार – स्वाध्याय करने के लिए जो योग्य काल हो, उसका विवेक करके स्वाध्याय करना कालाचार है।

५. विनयाचार – उद्धतपना छोड़कर श्रीगुरु के प्रति तथा शास्त्र के प्रति विनयपूर्वक ज्ञान की उपासना करना विनयाचार है।

६. उपधानाचार – उपवास-एकासन आदि योग्य अनुष्ठान सहित ज्ञान की उपासना करना, अमुक तप की धारणा सहित ज्ञान की आराधना करना उपधानाचार है।

७. बहुमानाचार – ज्ञान का अति आदर, ज्ञानदाता गुरु का भी विशेष आदर-बहुमान और ज्ञान के हेतुभूत शास्त्रादि का भी बहुमान करना बहुमानाचार है।

८. अनिन्हवाचार – जिन देव-शास्त्र-गुरु के निमित्त से स्वयं ज्ञान पाया, उनके उपकार को प्रसिद्ध करे, उनके नामादिक को नहीं छिपाना अनिन्हवाचार है।

इसप्रकार अष्ट प्रकार की आचार-शुद्धि से सम्यग्ज्ञान की आराधना करना।

आत्मज्ञान बिना जीव ने अनन्त काल में जो कुछ भी पुण्य-पाप किया, वह सब धर्म के लिए निष्फल गया, उसमें सुख बिल्कुल नहीं मिला, मात्र दु:ख ही मिला। अत: हे जीव ! तू अब तो चेत और उस पुण्य-पाप से पार ज्ञानस्वरूप आत्मा का विचार करके उसकी पहिचान कर। पुण्य-पाप से संसार मिलेगा, आत्मा नहीं मिलेगा, अत: वह सार नहीं है। इसलिए ''लाख बात की बात'' ऐसा कहा अर्थात् शुभाशुभ राग से पार आत्मा को जो शुद्ध ज्ञानानन्द स्वरूप है, उसको निश्चय से अन्तर में लाकर उसका अनुभव करो। ऐसा अनुभव ही मोक्ष के परम सुख का कारण है। अपना हित तो स्वसन्मुखता से होता है, परसन्मुखता से तो शुभ-अशुभ राग होता है, उसमें हित नहीं है। इसलिए पर से भिन्नता जान और पर तरफ के शुभाशुभ की भी रुचि छोड़कर, अन्तर के ज्ञान स्वरूप में लीन होकर उसका ध्यान कर – यही जैनधर्म के सर्व शास्त्रों का सार है। भगवान के कहे हुए चारों अनुयोगों का रहस्य है। ऐसे निश्चय श्रद्धा-ज्ञान बिना चारित्र कभी सच्चा नहीं होता अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना अन्य लाखों बातें करना असार है, मिथ्या है। लाखों बातों में सारभूत बात एक यही है कि आत्मा के शुद्धस्वरूप को पुण्य-पाप से पार पहिचानना और पुण्य-पाप के फल में हर्ष-शोक त्यागना। पुन:-पुन: कहते

हैं कि हे जीव! तू काल गंवाये बिना ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान का उद्यम कर। यदि आत्मज्ञान बिना अवसर खो देगा तो पछताने का पार नहीं रहेगा।

पण्डित बुधजनजी ने भी एक छहढाला लिखी है, उसका अनुसरण करके पण्डित दौलतरामजी ने यह छहढाला ग्रन्थ बनाया है। यह छहढाला बहु प्रचलित है, सुगम रचना होने पर भी इसमें गंभीर भाव भरे हैं। इसमें शास्त्रानुसार सूक्ष्म तत्त्वों का वर्णन किया है। इसमें कहते हैं कि जीव आत्मा को जाने बिना शुक्ललेश्या (शुक्लध्यान नहीं, किन्तु शुक्ललेश्या) करके अनन्त बार नवमें ग्रैवेयक तक गया; परन्तु लेश भी सुख नहीं पाया। यद्यपि ग्रैवेयक में जानेवाले सभी जीव अज्ञानी नहीं होते, बहुत से ज्ञानी होते हैं; परन्तु अज्ञानी को संसार में सबसे ऊँचा स्थान नवमें ग्रैवेयक में जाने वाले जीव को बाहर में नग्न दिगम्बर दशा अवश्य होती है। जिसे पंचमहाव्रत का बराबर पालन हो, देव-शास्त्र-गुरु की व्यवहार-श्रद्धा सच्ची हो, शास्त्रज्ञान व्यवहार से सच्चा हो, शुक्ललेश्या हो – ऐसा जीव नवमें ग्रैवेयक में जाने की पात्रता रखता है।

अरे ! इतना कर-करके भी मिथ्यादृष्टि जीव अनन्त बार नवमें ग्रैवेयक में गया। (सम्यग्दृष्टि का तो अनन्त बार नवमें ग्रैवेयक में जाना होता ही नहीं, उसको तो एक-दो-भव में संसारभ्रमण से छुटकारा हो जाता है) फिर भी उसे लेशमात्र भी सुख नहीं मिला, क्यों नहीं मिला ? क्योंकि सुख का सच्चा कारण उसके पास नहीं था। पंचमहाव्रत का शुभराग उसके पास था; परन्तु यह सुख का कारण थोड़े ही है। उस शुभराग में आत्मा कहाँ आया ? आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान बिना सुख कभी नहीं मिलता। पंचमहाव्रत का शुभ राग भी सुख का कारण नहीं है, उस राग से पार आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र ही सुख का कारण है। पुण्य और पाप - ये दोनों तो विभाव हैं, इनका फल संसार ही है। आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र ही आत्मा का स्वभाव है, उससे ही भव का अन्त आता है।

शुक्ललेश्या भिन्न वस्तु है और शुक्लध्यान भिन्न वस्तु है। शुक्ललेश्या तो अज्ञानी के भी हो सकती है; किन्तु उससे भव का अन्त नहीं आता, जबकि

शुक्लध्यान आत्मा की सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान उपरान्त चारित्र दशा में झूलते हुए मुनिवरों को होता है और उससे भव का अन्त आता है।

इसलिए शुभाशुभ राग से पार चैतन्य स्वरूप आत्मा को पहिचानना ही जैनधर्म के उपदेश का सार है। इसके सिवाय शुभाशुभ राग का फल तो संसार है, उसमें किंचित् भी सुख नहीं है। राग रहित आत्म स्वभाव का स्वयं संवेदन करे अर्थात् जैसा स्वभाव है, वैसा अनुभव में लेकर श्रद्धा-ज्ञान करे, तब मोक्षमार्ग बने, तभी सुख हो और दु:ख मिटे, इसके बिना लाखों उपाय करने पर भी दु:ख मिटकर सुख नहीं होगा।

ज्ञानस्वरूपी, अबन्ध स्वभावी आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र अबन्ध भावरूप हैं अर्थात् मोक्ष सुख के कारण हैं। निश्चय-रत्नत्रय मोक्ष के लिए नियम से कर्तव्य है – ऐसा नियमसार की तीसरी गाथा में कहा है –

जो नियम से कर्तव्य दर्शन-ज्ञान-व्रत यह नियम है।
यह सार पद विपरीत के परिहार हित परिकथित है।।

इस नियमरूप रत्नत्रय में राग नहीं आता, राग का तो उसमें परिहार है; क्योंकि राग तो निश्चय-रत्नत्रय से विपरीत है। व्यवहार रत्नत्रय में जो शुभराग है, यह नियम नहीं है, सारभूत नहीं है, मोक्ष के लिए कर्तव्य नहीं है। मोक्ष के लिए तो करने योग्य अपने आत्मा के अनुभवरूप पर से अत्यन्त निरपेक्ष और राग रहित श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र हैं, वे ही सारभूत हैं, वे ही स्वानुभूति कहे जाते हैं। भगवान आत्मा स्वानुभूति से प्रसिद्ध होता है – ऐसा समयसार के प्रथम मंगल श्लोक में कहा है। उस स्वानुभूति में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों समा जाते हैं; परन्तु राग उसमें नहीं समाता। भगवान आत्मा की प्रसिद्धि स्वानुभूति में होती है, राग में आत्मा प्रसिद्ध नहीं होता। अन्तर्मुख उपयोगरूप स्वानुभूति में भगवान आत्मा प्रसिद्ध होता है, अनुभव में आता है। ऐसी अनुभूति मंगलरूप है, मोक्ष का कारण है, अत: समयसार के प्रारम्भ में ही उसको स्मरण करके आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने मंगल किया है। **(क्रमश:)**

नियमसार प्रवचन –

साधु परमेष्ठी का स्वरूप

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार के शुद्धभावाधिकार की 75वीं गाथा पर हुये आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरस गर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलतः इसप्रकार है –

वावारविप्पमुक्का चउव्विहाराणसयारत्ता।
णिग्गंथा णिम्मोहा साहू दे एरिसा होंति ।।७५ ।।

(हरिगीत)

आराधना अनुरक्त नित व्यापार से भी मुक्त हैं।
जिनमार्ग में सब साधुजन निर्मोह हैं निर्ग्रन्थ हैं।।७५।।

सभी प्रकार के व्यापार से विमुक्त, चार प्रकार की आराधनाओं में सदा रक्त (लीन) निर्ग्रन्थ और निर्मोह साधु परमेष्ठी होते हैं।

(गतांक से आगे....)

सभी साधु परम निर्वाणसुन्दरी की सुन्दर माँग की शोभारूप कोमल केशर के रजपुंज के सुवर्णरंगी अलंकार को (केशर-रज की कनकरंगी शोभा को) अवलोकन करने में कौतूहल बुद्धिवाले होते हैं; अर्थात् पूर्वोक्त लक्षणवाले, मुक्तिसुन्दरी की अनुपमता का अवलोकन करने में आतुर बुद्धिवाले होते हैं। साधु मुक्तिसुन्दरी का वरण करने निकले हैं। परमशान्तिरूपी जो निर्वाणसुन्दरी, उसके बालों का सचिक्कण समूह-सुन्दर वीतरागी पर्यायों का झुण्ड, उसकी शोभा को देखने में कौतूहल बुद्धिवाले – पुरुषार्थ उग्र करने में उत्साहवाले साधु होते हैं।

साधु ज्ञानानन्द की लहर में ऐसे पड़े हैं कि बाहर शरीर पर प्रहार पड़ते हों, परीषह या उपसर्ग हो रहा हो, तथापि मुक्ति परिणति को – अनन्त

शुद्धपर्यायों के कन्दरूप मोक्ष को अवलोकन करने में उत्साह वाले हैं। सभी सन्त अपवाद रहित ऐसे ही होते हैं। साक्षात् तीर्थंकर भगवान विचरते थे; उस समय भी साधु ऐसे ही होते थे, और किसी को इस समय आत्मा के यथार्थ भानसहित साधुत्व प्रकट हो तो वह भी ऐसा ही होगा।

पद्मप्रभ मुनिराज ने स्वयं वन में रहकर वीतरागता का बखान किया है। साधु मुक्तिसुन्दरी को देखने में तत्पर हैं, किन्तु पुण्य या स्वर्ग में तत्पर नहीं हैं। इस काल में पुरुषार्थ निर्बल है; इसलिए मोक्ष प्राप्ति नहीं होगी, स्वर्ग ही जायेंगे; तथापि कौतूहल तो मुक्तिसुन्दरी के अवलोकन का ही है, स्वर्ग प्राप्ति का नहीं। साधु को वीतरागता तथा केवलज्ञान सहित मुक्तदशा के अलंकार को देखने की उत्सुकता है; किन्तु मरकर स्वर्ग में जाऊँगा अथवा राजकुमार होऊँगा, ऐसी अभिलाषा नहीं है। जिसको मरणोपरान्त स्वर्ग में जाने की इच्छा विद्यमान है, वह तो साधु ही नहीं है।

पंचमकाल में भी जो भावलिंगी सच्चे मुनि विचरते हैं, वे भी मोक्ष-परिणति को अवलोकन करने में कौतूहल वाले होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कोई साधु नहीं। श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यदेव, अमृतचन्द्राचार्यदेव तथा पद्मप्रभमलधारिदेव स्वयं भी ऐसे ही साधु थे। ऐसे साधु को पहचान कर उनकी श्रद्धा करना व्यवहारश्रद्धा कही जाती है।

अतः पंचपरमेष्ठी की बात व्यवहार अधिकार में कही गई है।

(आर्या)

भविनां भवसुखविमुखं त्यक्तं सर्वाभिषंगसंबंधात्।
मंक्षु विमंक्ष्व निजात्मनि वंद्यं नस्तन्मनः साधोः ।।१०६ ।।

(दोहा)

भव सुख से जो विमुख हैं सर्व संग से मुक्त।
उनका मन अभिवंद्य है जो निज में अनुरक्त।।१०६।।

भववाले जीवों के भवसुख से जो विमुख हैं और सर्व संग के सम्बन्ध से

जो मुक्त है, ऐसा वह साधु का मन हमें वंद्य है। हे साधु! उस मन को शीघ्र निजात्मा में मग्न करो।

निर्ग्रन्थ साधु कैसे होते हैं? निर्ग्रन्थ साधु भवसुख अर्थात्-पुण्य-पाप तथा हर्ष-शोक के भावरहित अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दस्वभाव में झुक गए हैं, इसलिए वे भवसुख से – कल्पित सुख से रहित हो गए हैं; तथा बाह्याभ्यन्तरसंग साधु के छूट गया है और परमभाव की लीनता उनके प्रकट हुई है, अतः ऐसे साधु का मन-निर्विकल्प परिणमन हमारे लिए वंद्य है।

साधु अन्तर-आनन्द में लीन हैं और संसारसुख से विमुख हो गए हैं – ऐसा अस्ति-नास्ति से कहा। साधु का मन अर्थात् चैतन्यपरिणमन त्रिकाली चैतन्य परमपारिणामिक भाव में ढल गया है, वह हमें वंद्य है। मुनिदशा ऐसी ही होती है। पद्मप्रभमुनिराज स्वयं कहते हैं कि उस मुनि का मन अर्थात् मुनि का परिणमन हमारे लिए वन्दनीय है। वे कहते हैं कि हे मुनि! उस वीतराग परिणति को निर्विकल्प स्वभाव में लीन कर दो। छठवें गुणस्थान में वृत्ति किंचित् बाहर झुकती हो, उसे शीघ्र निजानन्द-चैतन्य में लीन करो। इसका नाम मुनिदशा – साधकदशा है।

नियमसार गाथा ७६

एरिसयभावणाए ववहारणयस्स होदि चारित्तं।
णिच्छयणयस्स चरणं एत्तो उड्ढं पवक्खामि ।।७६ ।।

(हरिगीत)

इसतरह की भावना व्यवहार से चारित्र है।
अब कहूँगा मैं अरे निश्चयनयाश्रित चरण को ।।७६।।

यह, व्यवहारचारित्र-अधिकार के व्याख्यान के उपसंहार का और निश्चयचारित्र की सूचना का कथन है।

आत्मा के यथार्थ भानवाले तथा उसमें वीतरागी रमणतावाले मुनि को पाँच महाव्रत और पाँच समिति आदि होते हैं। महाव्रतादि निश्चय और

व्यवहार के भेद से दो प्रकार के हैं। अहिंसा आदि का विकल्प उठना राग है – पुण्यास्रव है – बंध का कारण है, उसे व्यवहार महाव्रत कहते हैं, और आत्मा की ज्ञानानन्दस्वभाव में लीनतारूप परिणति निश्चयमहाव्रत है। समिति में भी देखकर चलना, विचारकर बोलना आदि विकल्प शुभराग है, व्यवहार है; उस शुभराग से भी रहित अकेले ज्ञानानन्दस्वभाव में स्थिर होना निश्चयसमिति है। अशुभभाव की निवृत्ति व्यवहारगुप्ति है और शुभाशुभ भाव से निवृत्त होकर आत्मा में शान्त हो जाना निश्चयगुप्ति है।

पंच परमेष्ठी भगवन्तों को मानना, वह पुण्यभाव है, राग है, व्यवहार है तथा महाव्रतादि के भेद का विचार करना भी शुभराग है, व्यवहार है। आत्मा के भानसहित वीतरागी परिणति जिसको प्रगटी है उसको ऐसा शुभराग वर्त्तता है, उसे व्यवहार कहते हैं। अज्ञानी को तो ऐसा व्यवहार भी नहीं होता। महाव्रत, समिति आदि में जो स्वभाव के आश्रय से निर्विकल्प वीतरागता प्रगटी है, वह निश्चय है और जो शुभविकल्प उठता है, वह व्यवहार है, बंध का कारण है, और मोक्ष का बाधक है।

वास्तव में अभेद बिना भेद किसका? जहाँ अभेद अर्थात् निश्चयचारित्र हो, वहीं सच्चा व्यवहार होता है। वास्तव में तो जब अभेद हुआ, तब भेद को व्यवहार कहा गया।

भेद से अभेद होता हो – ऐसा नहीं है, किन्तु अभेद का ज्ञान होने पर ही भेद का ज्ञान यथार्थ होता है। व्यवहार से निश्चय प्राप्त हो अथवा बंध के आश्रय से अबंध होता हो – ऐसा नहीं है। जब स्व-परप्रकाशक स्वभाव का ज्ञान हुआ, तब राग का जो ज्ञान रहा, उसे व्यवहार कहा जाता है। यह निश्चयसहित का व्यवहार है। अभेद निर्विकल्प ज्ञानस्वभाव का जिसको भान है, उसको क्रम में आ पड़नेवाला राग का ज्ञान वह व्यवहार है और शुद्धस्वभाव की एकाग्रता का ज्ञान करना वह निश्चय है।

प्रश्न :– व्यवहार अर्थात् शुभराग सहचारी है कि सहकारी?

उत्तर :– सहकारी कहो या निमित्त कहो – दोनों एक ही हैं। आत्मा के भानसहित अन्दर स्वरूपरमणता की भूमिका में बीच में पुरुषार्थ की निर्बलता के कारण शुभराग होता है, उसको सहकारी कहते हैं; कारण कि धर्मीजीव की स्वभाव के ऊपर दृष्टि है, और उस स्वभावदृष्टि के बल से वह शुभराग का भी अभाव कर डालेगा तथा वीतरागता प्रगट करेगा; इसलिए पूर्व में शुभभाव के अभाव को नई वीतरागी शुद्धपर्याय का सहकारी कह सकते हैं।

यहाँ सहकारी का अर्थ मात्र निमित्त है, कुछ सहायता करता है – ऐसा उसका अर्थ नहीं है। शुभराग शुद्धता में कुछ सहायता करे – ऐसा है ही नहीं, कारण कि यदि वह सहायता करें तो अधिक शुभराग करने पर अधिक शुद्धता होना चाहिए, किन्तु ऐसा है नहीं। आत्मा अखण्ड चैतन्य ज्ञायक है, उसके भान होने के पश्चात् जो शुभवृत्ति रही, उसे व्यवहार कहते हैं। मिथ्यादृष्टि को निश्चय-व्यवहार में से एक भी नहीं होता। **(क्रमशः)**

वीतराग-विज्ञान के स्वामित्व का विवरण (फार्म 4 नियम नं. 8)

समाचार पत्र का नाम	:	वीतराग-विज्ञान (हिन्दी)
प्रकाशन स्थान	:	श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर-15 (राज.)
प्रकाशन अवधि	:	मासिक
प्रकाशक एवं मुद्रक	:	ब्र. यशपाल जैन (भारतीय) द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम.आई.रोड, जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित।
सम्पादक का नाम	:	डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल (भारतीय) श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर -15 (राज.)
स्वामित्व	:	पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-4, बापूनगर, जयपुर -15

मैं ब्र. यशपाल जैन एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकृत जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं। – प्रकाशक : **ब्र. यशपाल जैन**

दिनांक 26-2-2017 ट्रस्टी, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : परद्रव्य की पर्याय को नहीं करता – यह तो ठीक, तो क्या अपनी पर्याय को भी नहीं करता ?

उत्तर : अपनी पर्याय भी स्वकाल में होती ही है और होगी ही, फिर उसका क्या करना। वास्तव में तो यह ज्ञाता-दृष्टा ही है। प्रयत्नपूर्वक मोक्ष को करो – ऐसा कथन आता है, कमर कसकर मोह को जीतो – ऐसा भाषा में आता है; परन्तु वास्तव में तो इसकी दृष्टि में द्रव्य ही आया है अर्थात् यह ज्ञाता-दृष्टा ही है। ज्ञाता-दृष्टा में अनंत पुरुषार्थ है।

प्रश्न : जीव अजीव के कार्य भले ही न कर सके, किन्तु अपने परिणाम तो चाहे जैसे कर सकता है या नहीं ?

उत्तर : जीव अपने परिणाम भी चाहे जैसी इच्छानुसार नहीं कर सकता; किन्तु जो परिणाम जैसा होना है, वही होता है, आगे पीछे मनचाहा नहीं हो सकता। जगत में सबकुछ व्यवस्थित, क्रमसर होता है, कहीं कुछ फेरफार संभव नहीं है।

उतावला पुरुष फेर-फार करना तो बहुत चाहता है; परन्तु कुछ भी फेर-फार नहीं कर सकता। इन सब बातों का सार यही है कि हे भाई ! तू ध्रुवस्वभाव पर दृष्टि दे।

प्रश्न : क्या पर्याय का कारण स्व-द्रव्य भी नहीं है ?

उत्तर : परद्रव्य से तो अपनी पर्याय होती ही नहीं; अपितु अपने द्रव्य से पर्याय हुई – ऐसा कहना भी व्यवहार है। वास्तव में तो पर्याय, पर्याय की अर्थात् अपनी ही योग्यता से स्वकाल में होती है– यह निश्चय है। सम्यग्दर्शन की पर्याय का उत्पाद हुआ; इसलिये मिथ्यात्वकर्म का नाश हुआ, ऐसा तो है ही नहीं; किन्तु वर्तमान पर्याय में सम्यक्त्व का उत्पाद हुआ, इसकारण पूर्वपर्याय के मिथ्यात्वभाव का व्यय हुआ – ऐसा भी नहीं है। सम्यग्दर्शन की पर्याय का उत्पाद स्वतंत्र हुआ है और मिथ्यात्वभाव की पर्याय का व्यय भी स्वतंत्र हुआ है।

केवलज्ञान पर्याय का उत्पाद हुआ, वह केवलज्ञानावरणी कर्म के अभाव से हुआ – ऐसा तो है ही नहीं; किन्तु अपने द्रव्य के कारण से केवलज्ञान पर्याय का

उत्पाद हुआ– ऐसा भी नहीं है। पर्याय का पर्याय के षट्कारक से स्वतंत्र उत्पाद हुआ है। यहाँ तो पर्याय का दाता द्रव्य नहीं है – ऐसा कहना है। पर्याय का लक्ष द्रव्य के ऊपर जाता है, वह उस पर्याय की स्वयं की सामर्थ्य से ही जाता है; द्रव्य के कारण से नहीं। सम्यग्दर्शन की पर्याय का लक्ष द्रव्य के ऊपर जाता है, वह उस पर्याय का ही सामर्थ्य है। यही द्वादशांग का दोहन है।

वास्तव में तो पर्याय, पर्याय के स्वकाल में, जन्मक्षण में जो होनी हो, वही होती है। द्रव्य से पर्याय होती है – ऐसा कथन भी व्यवहार है। उत्पादरूप पर्याय का द्रव्य कारण नहीं है और व्यय भी कारण नहीं है। यह उत्पाद पर्याय का निश्चय है। सम्यग्दर्शन पर्याय द्रव्य के आश्रय से होती है – ऐसा कहना भी अपेक्षित कथन है। सम्यग्दर्शन पर्याय होती है, वह उसका जन्मक्षण है; किन्तु उस पर्याय का लक्ष्य द्रव्य के ऊपर है; इसलिये द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है – ऐसा कहा जाता है।

वास्तव में तो सम्यग्दर्शन पर्याय का, पर से भिन्न पड़ने का, भेदज्ञान पर्याय होने का स्वकाल है, जन्मक्षण है। तभी वह पर्याय होती है; परन्तु वह किसको होती है ? जिसका लक्ष द्रव्यस्वभाव के ऊपर होता है, उसी को होती है। पर्याय में खड़े-खड़े पर्याय के सन्मुख देखनेवाले को पर्याय के स्वकाल का सच्चा ज्ञान नहीं होता। जैनदर्शन का यही परमसत्य स्वरूप है।

प्रश्न : पर्याय को भी द्रव्य नहीं करता – ऐसा कहकर द्रव्य को बिल्कुल निकम्मा कर दिया ?

उत्तर : अरे भाई ! यह तो अन्तर की मूल बात है। इसमें द्रव्य निकम्मा नहीं हो जाता, अपितु अलौकीक द्रव्य सिद्ध होता है।

प्रश्न : परमाणु में रंगगुण त्रिकाली है, उसकी पर्याय प्रथम समय में काली हो, वह बदलकर द्वितीय समय में लाल, सफेद अथवा पीली हो जाये तो उसका कारण कौन है ? यदि रंग गुण कारण हो तो वह तो स्थायी रहता है, फिर परिणमन में विचित्रता कैसे ?

उत्तर : वास्तव में तो उस परमाणु में उस समय की पर्याय अपने षट्कारक से स्वतंत्र परिणमती है, उसमें उसका रंगगुण कारण नहीं है। इसीप्रकार प्रत्येक द्रव्य की पर्याय अपने-अपने स्वकाल में स्वतंत्र परिणमन करती है। अहा ! पर्याय की स्वतंत्रता की बात बहुत सूक्ष्म है।

समाचार दर्शन -

पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव संपन्न

भोपाल (म.प्र.) : यहाँ श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट दीवानगंज द्वारा नवनिर्मित ज्ञानोदय तीर्थधाम में आयोजित श्री 1008 आदिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव दिनाँक 1 से 6 फरवरी 2017 तक अनेक विशिष्ट कार्यक्रमों सहित सम्पन्न हुआ।

महोत्सव में आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी के सी.डी. प्रवचनों के अतिरिक्त अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान **डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल** द्वारा प्रतिदिन पंचकल्याणकों का स्वरूप एवं महत्व विषय पर हुए मार्मिक प्रवचनों का लाभ मिला। आपके अतिरिक्त डॉ. उत्तमचंदजी सिवनी, पण्डित विमलदादा झांझरी उज्जैन, ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना, पण्डित राजेन्द्रकुमारजी जबलपुर, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, ब्र. हेमचंदजी 'हेम' देवलाली, पण्डित शांतिकुमारजी पाटील जयपुर, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर इत्यादि अनेक विद्वानों के प्रवचन व सान्निध्य प्राप्त हुआ।

पञ्चकल्याणक की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा-विधि प्रतिष्ठाचार्य ब्र. जतीशचंदजी शास्त्री दिल्ली द्वारा रजनीभाई दोशी हिम्मतनगर के निर्देशन में ब्र. श्रेणिकजी जबलपुर, मनोजजी जबलपुर, ब्र.नन्हेभैया सागर, सुकुमालजी झांझरी उज्जैन, राजकुमारजी शास्त्री उदयपुर, ऋषभजी छिन्दवाड़ा, अजितजी शास्त्री अलवर, विरागजी शास्त्री जबलपुर, सुबोधजी शास्त्री शाहगढ, सुनीलजी धवल, अनिलजी धवल भोपाल, अश्विनजी नानावटी नोगांवां, अशोकजी उज्जैन आदि अनेक महानुभावों के सहयोग से शुद्ध तेरापंथ आम्नायानुसार संपन्न हुई।

बालक ऋषभकुमार के माता-पिता बनने का सौभाग्य श्री अशोक-सुधा जैन (सुभाष ट्रांसपोर्ट), भोपाल को प्राप्त हुआ। महोत्सव के सौधर्म इन्द्र-इन्द्राणी श्री संजय-सारिका मोदी भोपाल, कुबेर इन्द्र-इन्द्राणी श्री प्रणव-संगीता चौधरी भोपाल एवं महायज्ञनायक-नायिका श्री देवेन्द्र-श्रीमती स्नेहलता बड़कुल भोपाल थे। यागमंडल विधान का उद्घाटन श्री नरेन्द्र-चंदना जैन भोपाल, प्रतिष्ठा मंच का उद्घाटन इंजी.विनोदकुमार-मंजू जैन सतना एवं श्री सुधीर-विभा जैन (कृषि विकास) कटनी, सिंहद्वार उद्घाटन श्रीमती बसंतीदेवी-सुरेशचंद जैन, डॉ. सीमा-डॉ. दीपक जैन परिवार इंद्रपुरी भोपाल, श्रीमती आरती जैन व श्री स्वदेश जैन परिवार विदिशा एवं प्रतिष्ठा मण्डप का उद्घाटन श्री प्रेमचंदजी प्रेमी-मंजू जैन परिवार कटनी ने किया।

इस महोत्सव में पंच बालयति, उपरत्नों की चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ, पंचमेरु की अस्सी जिनालयों सहित गजदन्तों की बीस प्रतिमाएँ, भगवान शीतलनाथ की समवशरण की प्रतिमाएँ एवं मानस्तम्भ की आठ प्रतिमाएँ – इसप्रकार कुल 151 प्रतिमाओं की प्राण प्रतिष्ठा की गई।

महोत्सव को सफल बनाने में समिति के समस्त पदाधिकारियों के साथ अनेक नगरों के मुमुक्षु मण्डल व युवा फैडरेशन के सदस्यों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। ●

बाल-युवा संस्कार शिविर संपन्न

मुम्बई : यहाँ श्री कुन्दकुन्द कहान दिग. जैन मुमुक्षु मण्डल ट्रस्ट पार्ला-सांताक्रुज के अन्तर्गत विलेपार्ले में नवनिर्मित श्री सीमंधरस्वामी दिगम्बर जिनमंदिर में मुम्बई की समस्त पाठशालाओं के छात्रों हेतु श्री कहान बाल-युवा संस्कार शिविर दिनांक 5 फरवरी को संपन्न हुआ।

शिविर में प्रात: सीमंधर भगवान पूजन, गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के सी.डी. प्रवचन, प्रवचन पर प्रश्नोत्तरी, जिनेन्द्र-भक्ति, निगोद से निर्वाण विषय पर कक्षा, अकलंक-निकलंक कथा आदि कार्यक्रमों का आयोजन हुआ। सभी कार्यक्रम पार्ला के साधर्मीजनों द्वारा स्थानीय कार्यकर्त्ताओं के सहयोग से संपन्न कराये गये।

इस अवसर पर झवेरी बाजार, दादर-1, दादर-2, माहिम, घाटकोपर, वाशी, मुलुंड, मलाड-1, मलाड-2 उत्कर्ष, मलाड-3 एवरशाइन नगर, बोरीवली सोनीवाडी, बोरीवली सदिच्छा, दहिसर, भायंदर, वसई-1, वसई-2 एवं पार्ला की पाठशालाओं के लगभग 600 बाल-युवाओं सहित 850 साधर्मियों ने शिविर का लाभ लिया।

अन्त में सभी पाठशालाओं के अध्यापकों व कार्यकर्त्ताओं का सम्मान पार्ला ट्रस्ट के ट्रस्टियों द्वारा किया गया।

वार्षिकोत्सव संपन्न

छिन्दवाड़ा (म.प्र.) : यहाँ श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल एवं अ.भा. जैन युवा फैडरेशन के संयुक्त तत्त्वावधान में नई आबादी गांधीगंज स्थित श्री पार्श्वनाथ जिनालय का 13वाँ वार्षिक महोत्सव दिनांक 22 जनवरी को मनाया गया।

इस अवसर पर श्रीजी के प्रक्षाल के उपरान्त जिनालय पर ध्वजारोहण कर श्री नेमिनाथ पंचकल्याणक विधान किया गया एवं शोभायात्रा निकाली गई। कार्यक्रम में श्री जे.के. जैन (कलेक्टर) सहित सैंकड़ों साधर्मियों ने उपस्थित होकर लाभ लिया।

श्री पंचबालयति तीर्थंकर विधान संपन्न

दिल्ली : यहाँ घेवरा मोड़ स्थित अध्यात्मतीर्थ आत्मसाधना केन्द्र के श्री महावीर स्वामी दिगम्बर जिनमंदिर में दिनांक 5 फरवरी को श्री पंचबालयति तीर्थंकर विधान का आयोजन हुआ।

कार्यक्रम में अनेक स्थानों से लगभग 200 साधर्मियों ने लाभ लिया।

विधि-विधान के समस्त कार्य ब्र. अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री खनियांधाना के निर्देशन में पण्डित राकेशजी शास्त्री, पण्डित संदीपजी शास्त्री एवं पण्डित विवेकजी शास्त्री द्वारा संपन्न कराये गये। इसके अतिरिक्त शिखर पर स्वर्ण कलशारोहण की विधि भी संपन्न हुई।

आगामी कार्यक्रम...

सामूहिक बाल संस्कार शिविरों का आयोजन

श्री कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान उज्जैन, श्री कुन्दकुन्द स्वा. मंदिर ट्रस्ट भिण्ड एवं अ.भा.जैन युवा फै.भिण्ड के संयुक्त तत्त्वावधान में 13वें सामूहिक जैन बाल संस्कार शिक्षण शिविरों का आयोजन दिनांक 7 से 16 मई तक किया जा रहा है। इस वर्ष मध्यप्रदेश के भिण्ड, मुरैना, ग्वालियर, शिवपुरी, टीकमगढ, गुना, नरसिंहपुर में एवं उत्तरप्रदेश के इटावा, औरया, मैनपुरी, फिरोजाबाद, एटा, झांसी, ललितपुर जिलों के विभिन्न 101 स्थानों पर शिविर लगाने का लक्ष्य है। इसमें लगभग 175 विद्वानों की आवश्यकता है। अतएव जो महानुभाव बालबोध भाग 1,2,3 व वीतराग विज्ञान भाग 1,2,3 व छहढाला आदि पढा सकते हैं, हमें मोबाईल नम्बर 09826646644 (डॉ. सुरेश जैन) या 9826472529 (पुष्पेन्द्र जैन) व ई-मेल : kksmt.bhd@gmail.com पर सूचित करने की कृपा करें।

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

26 से 28 फरवरी	जयपुर	वार्षिकोत्सव एवं स्वर्ण जयन्ती समापन समारोह
3 मार्च	जयपुर (टोडरमल महाविद्यालय)	विदाई समारोह (शास्त्री अंतिमवर्ष)
5 से 12 मार्च	रामाशाह दि.जैन मंदिर मल्हारगंज, इन्दौर	समयसार विधान
2 से 9 अप्रैल	आत्मसाधना केन्द्र-दिल्ली	शिविर, कन्या निकेतन का दीक्षान्त समारोह, विज्ञान वाटिका पुरस्कार वितरण एवं उपकार दिवस
24 से 28 अप्रैल	देवलाली-नासिक	आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी जयन्ती
6 से 10 मई	नागपुर	पंचकल्याणक
21 मई से 7 जून	खनियांधाना (म.प्र.)	प्रशिक्षण शिविर

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो – वीडियो प्रवचन साहित्य एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिये अवश्य देखें –
वेबसाईट – www.vitragvani.com
संपर्क सूत्र-श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई
Ph.: 022-26130820, 26104912, E-Mail- info@vitragvani.com

शोक समाचार

(1) जयपुर (म.प्र.) निवासी श्रीमती सुशीलादेवी डंडिया धर्मपत्नी श्री मिलापचंदजी डंडिया (अध्यक्ष-जैन संस्कृति रक्षा मंच) का दिनांक 31 जनवरी को 82 वर्ष की आयु में शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया।

(2) भोपाल (म.प्र.) निवासी श्री मनोज जैन एडवोकेट एवं श्रीमती मोनिका जैन का दिनांक 30 दिसम्बर 2016 को सिद्धक्षेत्र सोनागिर से वापस आते समय आकस्मिक दुर्घटनापूर्वक देहावसान हो गया। आपकी स्मृति में वीतराग-विज्ञान हेतु 1100/- रुपये प्राप्त हुये।

(3) बूंदी (राज.) निवासी श्री विजयकुमारजी जैन पुत्र स्व.श्री गेंदालालजी जैन का दिनांक 28 जनवरी को शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। आपकी स्मृति में जैनपथप्रदर्शक एवं वीतराग-विज्ञान हेतु 550-550/- रुपये प्राप्त हुये।

(4) मुम्बई निवासी श्रीमती तेजप्रभा बड़जात्या ध.प. श्री उम्मेदमलजी बड़जात्या का दिनांक 22 जनवरी को शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया।

ज्ञातव्य है कि आप दादर-मुम्बई मुमुक्षु मण्डल के आधार स्तम्भ श्री कमलजी बड़जात्या की माताजी थीं। टोडरमल स्मारक से चलने वाली गतिविधियों में सदैव आपका सक्रिय सहयोग रहा। आपकी स्मृति में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट हेतु 11 हजार रुपये प्राप्त हुये; एतदर्थ धन्यवाद।

(5) दिग. जैन महासमिति के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री अशोकजी बड़जात्या और मुमुक्षु समाज इन्दौर के अध्यक्ष श्री विजयजी बड़जात्या की माताजी **श्रीकमलप्रभा बड़जात्या** का दिनांक 29 जनवरी को 86 वर्ष की आयु में अकस्मात् देहपरिवर्तन हो गया है। आप गहन तत्त्वाभ्यासी थीं। आज पूरे परिवार में धार्मिक संस्कारों का श्रेय आपको ही जाता है।

(6) हाथरस (उ.प्र.) निवासी श्री रतनलालजी चांदवाड़ का दिनांक 19 दिसम्बर.16 को शांतभावोंपूर्वक देहावसान हो गया। आपकी स्मृति में वीतराग-विज्ञान एवं जैनपथप्रदर्शक हेतु 550-550/- रुपये प्राप्त हुये।

(7) गुना (म.प्र.) निवासी श्री सुरेन्द्रकुमारजी बांझल मुम्बई का दिनांक 1 फरवरी को बसंत पंचमी के दिन 77 वर्ष की आयु में शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। आप जयपुर शिविर एवं अन्यत्र लगने वाले शिविरों एवं पंचकल्याणकों में प्रतिवर्ष पधारकर तत्त्वज्ञान का लाभ लिया करते थे। आपकी स्मृति में वीतराग-विज्ञान हेतु 1100/- रुपये प्राप्त हुये।

दिवंगत आत्मायें चतुर्गति के दु:खों से छूटकर शीघ्र ही अनंत अतीन्द्रिय आनंद को प्राप्त हों - यही मंगल भावना है।

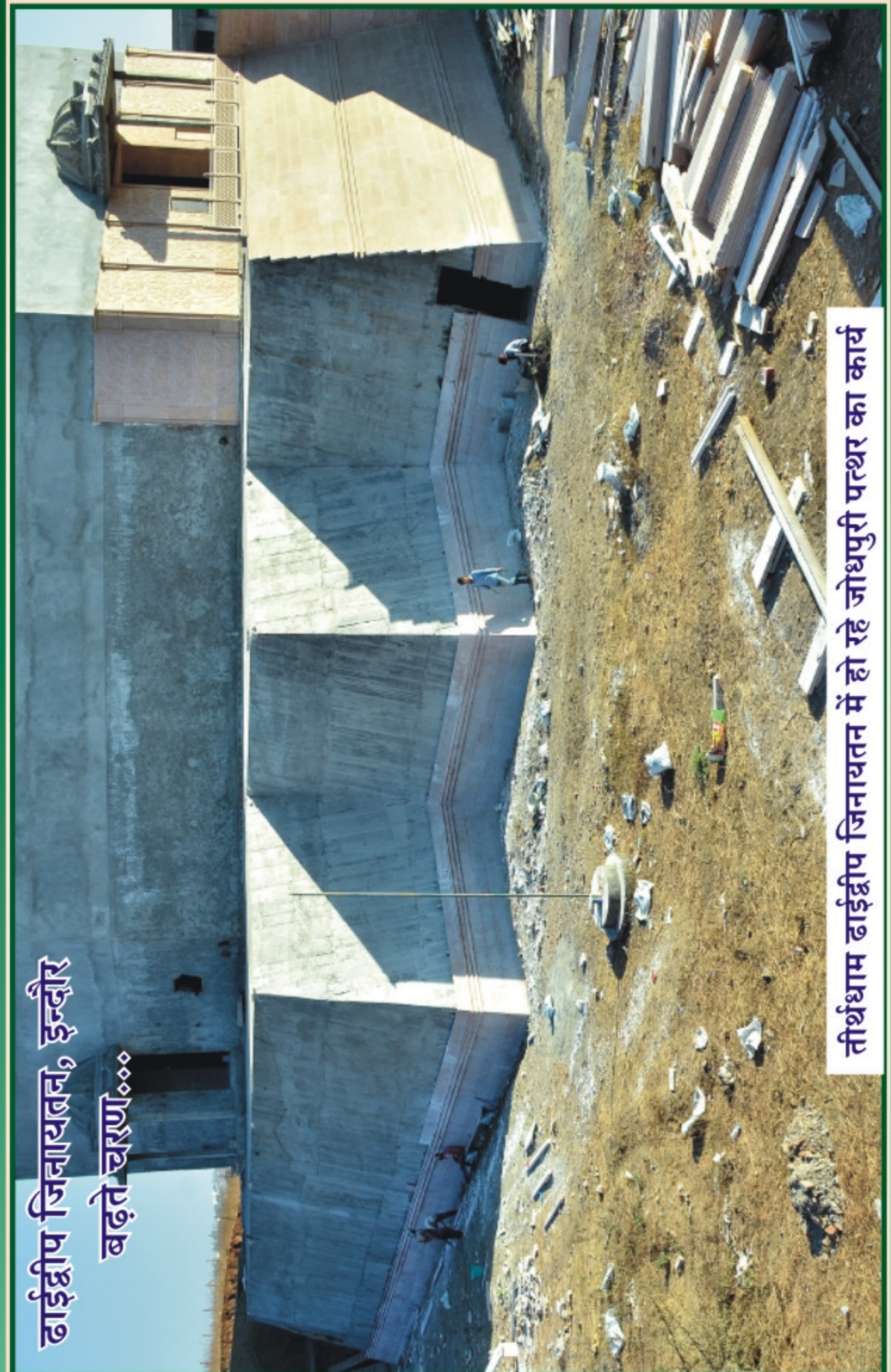

R.N.I. No. 38278/83 ***Postal Regd. No. JaipurCity/421/2015-17***

तीर्थधाम ढाईद्वीप जिनायतन में बन रहे 108 फीट के सिंहद्वार का दृश्य

सम्पादक :
डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच. डी.
सह-सम्पादक :
डॉ. संजीवकुमार गोधा
एम.ए.द्वय , नेट, एम. फिल (जैनदर्शन), पीएच.डी.
प्रकाशक एवं मुद्रक :
ब्र. यशपाल जैन, एम. ए.
द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये
जयपुर प्रिंटर्स प्रा.लि., जयपुर से
मुद्रित एवं प्रकाशित।

If undelivered please return to -- **Pandit Todarmal Smarak Trust , A-4, Bapu Nagar, Jaipur - 302015**